RESEARCH PAPER

RESEARCH REVIEW International Journal of Multidisciplinary
e-ISSN: 2455-3085 | Vol.06 | Iss.07 | July 2021 | pp. 20-26
Double-Blind Peer Reviewed/Refereed Journal

डेनिश ईस्ट इंडिया कंपनी : स्थापना तथा भारत और दक्षिण पूर्व एशिया मे कंपनी की व्यापारिक गतिविधियां 1620–1650

*नितिश सचदेवा

असिस्टेन्ट प्रोफेसर, इतिहास, गर्वनमेंट कॉलेज पूर्वी, लुधियाना, पंजाब

Abstract

17वीं शताब्दी के भारत के इतिहास मे यूरोपीय व्यापारिक कंपनीयों की भारत मे जो गतिविधियां शुरु हुई उनमे अधीकतर अंग्रेजो, पुर्तगालीयों, डचों, और फ्रेंच के बारे मे ही अधीकतर अध्ययन किया जाता रहा है। लेकीन इसी समय एक और मुख्य व्यापारिक कंपनी थी। जिसका हम यहां अध्यन कर रहे हें, वे थी डेनिश ईस्ट इंडिया कंपनी। इस शोध लेखन का मुख्य उद्देश्य यह जानना हे की कैसे इस कंपनी की स्थापना हुई। और कैसे इस कंपनी ने अपने कम संसाधनो के बावजूद भारत तथा दक्षिण–पूर्व एशिया मे अपनी आर्थिक गतिविधियां जारी रखी। इसी के साथ ही कंपनी को भारत मे अपने प्रतिनिधियों से कैसी चुनौतियों का सामना करना पड़ा। और कंपनी के भारत मे स्थानीय शासकों के साथ संबंध कैसे रहे। अंत बहुत से कारणों की वजह से इस कंपनी का अन्य यूरोपीय कंपनीयों के मुकाबले पहले पतन हुआ।

Keywords: *डेनिश, कंपनी, मसूलीपट्टनम, जहाज, व्यापार।*

Article Publication

Published Online: 15-Jul-2021

***Author's Correspondence**

नितिश सचदेवा

असिस्टेन्ट प्रोफेसर, इतिहास, गर्वनमेंट कॉलेज पूर्वी, लुधियाना, पंजाब

nitishsachdeva239@gmail.com

10.31305/rrijm.2021.v06.i07.004

© 2021The Authors. Published by RESEARCH REVIEW International Journal of Multidisciplinary. This is an open access article under the CC BY-NC-ND license (https://creativecommons.org/licenses/by-nc-nd/4.0/)

प्रस्तावना

अगर हम भारत के इतिहास मे यूरोपीय देशों की 17वीं शताब्दी के आरम्भ से भारत मे गतिविधियों के बारे मे बात करें तो हमे अधीकतर पुस्तकों में पुर्तगाल, इंग्लैंड, फ्रांस, और डचों के बारे में अधीकतर जानकारी मिलती है। क्योंकी इन्हीं देशों और इनकी ही व्यापारिक कंपनीयों की भारत मे अधिक से अधिक उपनिवेश स्थापित करने की होड लगी रही साथ ही इन्हीं कंपनीयों ने भारत मे आपस मे संधर्ष के साथ–साथ भारत की आंतरिक राजनीति में हस्तक्षेप और भारतीय क्षेत्रों पर अधीकार किया। इन्हीं देशों ने ही भारत में अधीकतर उपनिवेश स्थापित किए। शायद इस वजह से ही अधीकतर इतिहासकारों ने इन पर अधीक लेखन कार्य किया है। यहां इस लेख मे हम डेनमार्क की पहली डेनिश ईस्ट इंडिया कंपनी की भारत मे गतिविधियों पर चर्चा करेंगे। जब 17वीं शताब्दी की शुरुआत में पुर्तगाल, इंग्लैंड, और डच की व्यापारिक कंपनीयां आशा अंतरीप (केप ऑफ गुड होप) के पार व्यापार करने लगी तो इसे देख डेनमार्क के शासक क्रिश्चियन चतुर्थ को भी आशा अंतरीप के पार व्यापार करने की उत्सुकता जागी, साथ ही डेनीश व्यापारी भी ये कल्पना करते थे, की ईस्ट इंडिया तथा पूर्व से होने वाले बडे व्यापारिक लाभ में उन्हें कुछ भाग कैसे मिल सकता है।[1]

डेनीश ईस्ट इंडिया कंपनी की स्थापना

इसकी शुरुआत उस समय आरम्भ हुई जब डेनमार्क मे बसे दो डच व्यापारी भाई जिनमे जॉन डेव विलियम और हरमन रोसनकरांज ने कोपेनहेगन के व्यापारीयों को एक कंपनी बना ईस्ट में व्यापार करने के लिए प्रोत्साहीत किया और उन्हें

[1] एस्टा ब्रेडसडरोफ, *द ट्रेल्स एंड ट्रेवल्स ऑफ विलेम लायल एन अकांउट ऑफ द डेनिश ईस्ट इंडिया कंपनी इन ट्रांक्यूबर 1639–48,* (म्यूजियम तस्कयूलेनम प्रेस, कोपेनहेगन, 2009), पृ. 10

सहायता देने का आश्वासन दिया। इन दोनो व्यापारीयों द्धारा डेनीश कंपनी को इसकी शुरुआत मे कुल कंपनी स्टॉक का लगभग आठवां हिस्सा प्रदान किया गया और डेनीश शासक क्रिश्चियन चतुर्थ ने 17000 रिक्स डॉलर, शेष निवेश डेनमार्क, नॉर्वे के कुलीनों और बहुत से डच लोगों ने इसमें अपना निवेश किया। यह कंपनी 1,80,000 रिक्स डालर की थी। फिर डेनीश ईस्ट इंडिया कंपनी की स्थापना 17 मार्च 1616 को क्रिश्चियन चतुर्थ द्धारा एक शाही चार्टर प्रदान करके की गई। यह चार्टर 12 वर्ष के लिए था। इस कंपनी का डेनीश नाम *'डेंस्क ओस्टीनडिस्क कोमपेगनी'* था। मगर कंपनी बनने के बाद कार्य तब शुरु हुआ जब मार्सेलस डी बोसुवेयर नामक डच कंपनी का अधीकारी क्रिश्चियन चतुर्थ से मिलने डेनमार्क आया। इसने अपने आप को *सीलोन* (श्री लंका) के शासक का प्रतिनिधि बताया बोसुवेयर ने सीलोन के शासक की तरफ से सीलोन मे उन्हें व्यापार करने की इच्छा का जिकर किया। इस तरह कोपेनहेगन मे क्रिश्चियन चतुर्थ और सीलोन के शासक की तरफ से बोसुवेयर के बीच 30 मार्च 1618 मे एक संधि की गई। जिसमें पुर्तगालीयों को सीलोन से पीछे हटाने मे सीलोन के शासक की मदद करनी होगी, डेन शासक जंगी जहाजों और 300 सिपाहीयों से उनकी सात वर्ष के लिए मदद करेगा बदले मे डेनीश कंपनी को सीलोन मे 12 वर्ष के लिए विदेशी व्यापार करने का एकाधिकार प्रदान किया जाएगा।[2] ये कंपनी एक तरह से डच कंपनी की ही नकल थी। जिसमें बहुत से डच व्यापारी जो डच ईस्ट इंडिया कंपनी से अस्तुष्ट थे, तथा डेनमार्क मे बस गए थे। उन्होंने इस कंपनी की शुरुआत करने मे सहायता की और बहुत सारी पूंजी निवेश कर इसके हिस्सेधारक (शेयर होल्डर) बने। अगस्त 1618 को एक जहाज जिसका नाम *ओरेसंड* था रॉलेंड क्रेपी जिसके तंजौर के शासक से अच्छे संबंध थे। उसके नेतृत्व में इंडिया के लिए भेजा गया। साथ ही नवंबर 1618 मे पांच जहाज सीलोन के लिए कोपेनहेगन से रवाना किए गए जिनमें से दो जंगी जहाज *डेवीड, एलेफानटेन,* क्रिश्चियन चतुर्थ की तरफ से कंपनी को दिए गए थे, और तीन मालवाहक जहाज *क्रिश्चियन, कोबेनहव्न, ओरेसंड* जो पहले ही रोलेंड क्रेपी के नेतृत्व में रवाना हो चुका था डेनिश ईस्ट इंडिया कंपनी द्धारा खरीदे गए। इस अभियान का कमांडर डेन ओव गिडे था। इस अभियान में 500 से अधीक लोग थे और इस दल मे अलग–अलग यूरोपीय राष्ट्रों से लोग शामील हुए जिसमे अधीकतर सैनिक जर्मन के तथा जहाज चलाने वाले कर्मचारी जैसे नेवीगेटर ये ड़च थे, क्योंकी इन्हें ईस्ट इंडिया की यात्रा का अनुभव था। हालाकि इस अभियान का कमांडर ओव गिडे भी कभी यूरोप से बाहर किसी समुद्री अभियान पर नही गया था। इस अभियान मे उन्हें बेहद मुश्किलों का सामना करना पडा आधे से ज्यादा अभियान दल की समुद्री लुटेरों द्धारा हमला करने और बीमार होने की वजह से मृत्यु हो गई। मगर इस अभियान में बोसुवेयर की भी मृत्यु हो गई।

आखिर ये अभियान दल मई 1620 मे सीलोन पहुंचा मगर यहां पहुंचने पर उन्होंने पाया की यहां परिस्थितियां वैसी नहीं हें जैसी बोसुवेयर ने बयान की थी। ओव गिडे ने वहां के हालात का जायजा लिया। इस लिए उन्होंने ने सोचा की यहां के शासक को कोई जंगी जहाजों ओर पुर्तगालीयों के साथ मुकाबला करने की जरुरत नही है। *फिलिप बालडेयू* के अनुसार, "जब गिडे ने सीलोन शासक को बोसुवेयर से हुई संधि के बारे मे बताया तो सीलोन के शासक ने साफ मना कर दिया था की उसने बोसुवेयर को कोई समझौता या संधि करने का अधीकार प्रदान नही किया था। इस तरह डेनीश कंपनी का प्रस्ताव ठुकरा दिया गया।"[3] फिर भी सीलोन के शासक ने डेनीश कंपनी से 21 अगस्त 1620 को एक नई संधि कर ली, जिसमें कंपनी को *त्रिंकोमाली* मे अपनी व्यापारिक गतिविधियां आरम्भ करने का अधीकार दिया गया और कंपनी को बहुत से करों से स्वतंत्रता प्रदान की गई। साथ ही कंपनी को वहां अपनी टकसाल बना अपने सिक्के बनाने का अधीकार भी प्रदान किया गया। दूसरी तरफ रोलेंड क्रेपी ने कोरोमंडल तट पर पहुंचते ही पुर्तगालीयों के तटीय स्थानों जाफना, नागपट्टिनम पर हमला कर दिया। बाद मे इन तटीय बंदरगाहो मे रहने वाले पुर्तगालीयों की जवाबी कार्यवाही मे उन्होंने ओरेसंड जहाज को पकड लिया और उसे नष्ट कर दिया। साथ ही क्रेपी के साथ उसके 13 साथीयों को भी पकड लिया गया। क्रेपी किसी तरह उनकी कैद से निकल कर तंजौर के शासक रधुनाथ नायक के पास पहुंचा जो की रोलेंड क्रेपी से पहले भी मिल चुका था। क्रेपी इस अभियान से पहले पांच बार भारत की यात्रा कर चुका था। (संभवत डच ईस्ट इंडिया कंपनी के तरफ से) रधुनाथ नायक से मिलकर उसने डेनीश कंपनी को यहां व्यापार करने की बातचीत के लिए राजी किया। इसके पश्चात क्रेपी ने ओव गिडे को रधुनाथ नायक से मिलने के लिए सीलोन संदेश भेजा। गिडे सितंबर में सीलोन से तंजौर के लिए रवाना हुआ। रोलेंड क्रेपी ने गिडे को रधुनाथ नायक से मिलने के लिए पहले से ही संदेश भेज कर उसे शासक से कैसे शिष्टाचार करना हे अवगत करा दिया था। क्रेपी के सुझाव पर ओव गिडे ने शासक को उपहार में दो तोपें और इसके साथ उनके एक सौ

[2] एस्थर फिहल, 'शिपरेकड ऑन द कोरोमंडलः द फर्स्ट इंडो–डेनीश कांटेक्ट,1620', *रिव्यू ऑफ डेवलपमेंट एंड चेंज,* वॉल्यूम 14, (1 एंड 2), 2009 पृ 23

[3] फिलिप बालडेयु , *'ए डिसक्रिपशन ऑफ द ईस्ट इंडिया कोस्ट ऑफ मालाबार एंड कोरोमंडल एंड आलसो ऑफ द आइल ऑफ सीलोन '* (एशियन एजुकेशनल सर्विस, नई दिल्ली, 2000) पृ. 700

तोप के गोले देने का प्रबंध भी किया।[4] आखिर 20 नवंबर 1620 को तंजौर के शासक के साथ एक संधि की गई। जिसमें तंजौर के शासक ने *ट्रांक्यूबर* (आज का थरंगमबाडी) का क्षेत्र कंपनी को प्रदान किया और साथ ही यहां एक किले का निर्माण करने करने का भी अधीकार प्रदान किया गया। ये एक गांव था। इसके साथ कंपनी को इसके साथ के पडोसी गांवो से कर एकत्रित करने का अधीकार भी दिया गया और कई प्रकार के करों से कंपनी को रियायतें प्रदान की गई। इसके बदले कंपनी नायक को प्रत्येक विजयदशमी के अवसर पर 2000 चक्रम (मुद्रा का प्रकार) और 3111 रुपए प्रदान करेगी। ओव गिडे ने यहां शीध्र ही पहले डेनिश फोर्ट का निर्माण कराया जिसका नाम *'फोर्ट डेंसबोर्ग'* था। इस किले के निर्माण मे नायक के लोगों की सहायता ली गई क्योंकी कंपनी के पास इतने लोग नही थे किले का निमार्ण करने के लिए, काफी समय तक ये किला डेनीश कंपनी का भारत में केंद्र रहा। ओव गिडे डेनीश कंपनी का पहला गर्वनर था। इसके पश्चात गिडे ने वापस जाने का निर्णय किया वह अपने साथ काली मिर्च को जहाज पर लाद कर ले जाना चाहता था। मगर उसके पास इतना पैसा नही था इसके बदले उसने तंजौर के शासक रधुनाथ नायक के पास कुछ तोपें गिरवी रखी और जिससे वह कुछ मिर्च खरीद पाया।[5] 13 फरवरी 1621 को उसने वहां से वापीस सीलोन की यात्रा शुरु की। ओव गिडे ने अपने सैनीकों, व्यापारीयों तथा रोलेंड क्रेपी को डेंसबोर्ग मे लगातार व्यापार करने के लिए छोड़ दिया, जिससे वह मालवाहक जहाज *कोबेहव्न* को पूरी तरह माल से लाद कर डेनमार्क रवाना कर सकें ओर वह तब तक काली मिर्च खरीदते रहेंगे जब तक अतिरिक्त जहाज नही आ जाते।[6]

कंपनी का भारत में तथा दक्षिण पुर्वी एशियाई क्षेत्रों प्रसार तथा व्यापारिक गतिविधियां

ओव गिडे मार्च 1622 को कोपनहेगन पहुंचा उसके जाने के पश्चात रोलेंड क्रेपी कंपनी का भारत मे गर्वनर बना, वह 1636 तक गर्वनर के पद पर रहा। क्रेपी ने गर्वनर बनते ही कंपनी के व्यापार को भारत तथा अन्य एशियाई देशों मे फैलाने के प्रयास आरम्भ कर दिए। ट्रांक्यूबर से दक्षिण की तरफ तटीय व्यापार पहले सीलोन तक बढाया गया। सारे यूरोप मे उस समय मे काली मिर्च की भारी मांग थी। काली मिर्च का अधीकतर उत्पादन दक्षिण–पूर्वी एशिया के पश्चिमी हिस्से मे अधीक होता था, जिनमे मुख्य थे सुमात्रा और मालाबार। डेनीश कंपनी पहले स्थानीय व्यापारीयों से ही इसे खरीदती थी। बाद मे कंपनी ने मालाबार मे स्वंय जाकर मिर्च खरीदने के लिए अभियान भेजे। शीध्र ही मांग बढने की वजह से इसके मुल्यों मे भी वृद्धि हुई, जिससे डेनीश कंपनी को पर्याप्त मात्रा मे इसकी आपूर्ति होनी बंद हो गई। इसके पश्चात उनके पास सुमात्रा का विकल्प था, मगर उन्होंने मलय प्रायद्धीप का रुख किया। जहां कंपनी द्धारा सबसे पहला लंबा समुद्री व्यापारिक संबंध *तनासरीम* से विकसित किया गया। जहां डेनीश कंपनी को पुर्तगालीयों से कडी प्रतियोगिता का सामना करना पडा जो पहले से ही *नागापट्टिनम* से इस मार्ग पर अपनी गतिविधियां संचालित कर रहे थे। मगर कंपनी के पास पूंजी की कमी होने की वजह से ये कार्य पुर्तगालीयों के माल की ढुलाई की गतिविधियों मे परिवर्तित हो गया।

1624 को कोपेनहेगन से और जहाज तथा पूंजी के आने से कंपनी ने अपने व्यापारिक संबंध ट्रांक्यूबर से इंडोनेशीया के *मकस्सार* से कई तरह के मसाले खरीदने के लिए स्थापित किए, जिनमे लोंग ओर चंदन की लकडी मुख्य थी। कंपनी के पहले अभियान के पश्चात डेनमार्क से पहले मालवाहक जहाज *वेंदहुंडन* और *क्रिसटियनहेवन* 1622 को कोरोमंडल के लिए रवाना किए गए जो 1623 को कोरोमंडल पहुंचे। साथ ही इसके अगले वर्ष *पेर्लन* और *जुपीटर* नामक दो जहाज ओर भेजे गए। 1623 को वेंदहुंडन को मकस्सार के लिए रवाना किया गया जो 1624 के आरंभ मे कोरोमंडल पंहुचा ये मक्कसार से 40 *बहार* (19,200 डच पाउंड यानि 9600 किलोग्राम) लोंग लेकर पहुंचा जो कोरोमंडल के बाजार मे लाए गए।[7] डेनीश कंपनी मकस्सार से लोंग और चंदन खरीदती थी। अभी मकस्सार के लोंग के व्यापार पर डच कंपनी की एकाधिकार स्थापित नही हुआ था। 'मकस्सार की मुख्य भूमिका ये थी की ये *मोलुक्का* द्धीप से लोंग की होने वाली तस्करी का एक प्रमुख बिक्री स्थल था। 1620 के अंत तक डेनीश कंपनी की तरफ से नियमित रुप से प्रत्येक वर्ष दो जहाज ट्रांक्यूबर से मकस्सार भेजे जाते थे, यह इस लिए तांकि कंपनी डेनमार्क जहाज वापिस भेजने तक यहां से वस्तुएं खरीदती तथा एकत्रित करती रहे। डेनीश कंपनी मकस्सार से लोंग लेने वाली मुख्य खरीददार बन गई थी।[8] डेनीश कंपनी मकस्सार से लोंग, चंदन की लकडी के अलावा

[4] एस्थर फिहल, *'शिपरेकड ऑन द कोरोमंडलः द फर्स्ट इंडो–डेनीश कांटेक्ट, 1620 '* पृ. 30

[5] रैंडॉल्फ़ स्टॉव, *'डेनमार्क इन द इंडियन ओसियन, 1616–1845 एन इंट्रोडक्शन'*, कुनापीपी 1(1), 1979, पृ. 13–14

[6] एस्थर फिहल, वही, पृ. 36

[7] संजय सुब्रमनयम, *द पोलिटिकल इकॉनमी ऑफ कॉमर्स : साउर्दन इंडिया 1500–1650*, (कैंब्रिज यनिवर्सिटी प्रेस, कैंब्रिज, 1990), पृ. 183

[8] ओम प्रकाश, *द न्यू कैंब्रिज हिस्ट्री ऑफ इंडिया, यूरोपियन कमर्शियल एंटरप्राइज इन प्री कोलोनियल इंडिया,* (कैंब्रिज यनिवर्सिटी प्रेस, कैंब्रिज, 1998), पृ. 209

कछुए के खोल, चीनी, तथा रेशम का बना माल कोरोमंडल आयात करती थी, इन वस्तुओं के बदले मे कोरोमंडल का निर्मित कपड़ा दिया जाता था। ये व्यापार वस्तु विनिमय पर अधारित था।[9]

कंपनी के मकस्सार के साथ लोंग के आयात ने कोरोमंडल के माल की कीमतों पर प्रतिकूल प्रभाव डाला, जिससे डच कंपनी को बाजार पर अपनी पकड़ बनाए रखने के लिए अपने माल की कीमतों मे कटौती करनी पडी। कंपनी का मकस्सार से होने वाला आयात प्रतिवर्ष बढता रहा 1628 मे क्रिसटियनहेवन एक मालवाहक जहाज मकस्सार से 100 बहार लोंग इतनी ही मात्रा मे चंदन और इसके अलावा 40 बहार जायफल लेकर वापस आया।[10] 1628 मे मकस्सार को जाने वाले अभियान का नेतृत्व स्वंय रोलेंड क्रेपी ने किया, जिससे यह पता चलता हे की यह व्यापार डेनीशों के लिए बहुत महत्वपुर्ण था। 1632 तक कंपनी का मकस्सार से होने वाला लोंग का आयात 1,50,000 डच पोंड मूल्य और 7.5 टन तक पहुंच गया। शीध्र ही क्रेपी ने क्रिसटियनहेवन जहाज को डेनमार्क के लिए रवाना किया जो 100 सूत के धागे की गठरीयां, 57,600 डच पोंड काली मिर्च, 36 बहार शोरा और 48000 पोंड लोंग लाद कर डेनमार्क पहुंचा, इस सारे माल की कीमत 90,000 डच गिल्डर (फलोरीन) थी।[11]

दक्षिण पूर्वी एशियाई देशों से जो डेनीश कंपनी का व्यापार होता था वह ट्रांक्यूबर से और मसूलीपट्टनम से ही होता था। मसूलीपट्टनम गोलकुंडा सम्राज्य का महत्वपूर्ण बंदरगाह था। मसूलीपट्टनम की महत्ता ये थी की ये भूमि मार्ग से दक्कन के बहुत से भीतरी क्षेत्रों से जुडा हुआ था। इसके अलावा मसूलीपट्टनम ने दक्षिण पूर्व एशिया के देशों से व्यापार करने मे महत्वपूर्ण भूमिका हासिल की थी। इस लिए इस क्षेत्र से व्यापारिक लाभ प्रापत करने के लिए यहां अधीकतर यूरोपीय व्यापारिक कंपनीयों ने यहां अपनी फैक्ट्रीयां स्थापित की। डेनीश ईस्ट इंडिया कंपनी ने 1625 मे मसूलीपट्टनम मे अपनी फैक्ट्री स्थापित की। शरुआत मे कंपनी यहां से दक्षिण पूर्वी एशिया के मसालों को देकर बदले मे यहां से कपडा प्रापत करती थी। शीध्र ही मसूलीपट्टनम की फैक्ट्री डेनीशों के लिए ट्रांक्यूबर से अधीक महत्वपूर्ण बन गई थी। इसकी महत्ता का पता इस बात से भी चलता है की क्रेपी के पश्चात डेनीश कंपनी के गर्वनर बने *बेरंट पेसार्ट* ने 1636 से 1641 तक ट्रांक्यूबर की जगह मसूलीपट्टनम को अपना निवास स्थान बनाया।[12] मसूलीपट्टनम मे डेनीश कंपनी का शुरुआती आयात व्यापार 1626–30 तक की अवधि तक लगभग 8000 से 10000 पेगोडा (40000 से 50000 डच फलोरीन) प्रतिवर्ष था। ये राशि डच व्यापार के मुकाबले मे काफी कम थी।

दक्षिण पूर्वी एशिया मे जहां डेनीश कंपनी का व्यापार मकस्सार तथा तनासरीम से समृद्ध तथा फल फूल रहा था, वही साथ ही कंपनी ने *बेंटम* से काली मिर्च जुटाने के प्रयास आरंभ कर दिए। बेंटम इंडोनेशिया के जावा के पश्चिम मे स्थित एक बंदरगाह नगर है। बेंटम उन महत्वपुर्ण क्षेत्रों के समीप था, जहां मिर्च, तथा और कई मसालों की पैदावार होती थी। मगर यहां का वातावरण यूरोपीयों के लिए अनुकूल नही था।[13] जब डचों ने उत्तरी जावा पर व्यापारिक एकाधिकार स्थापित किया, तब बेंटम के शासक अब्दुलफतह अगंग ने यूरोपीयों के साथ व्यापार करने के प्रयास शुरु कर दिए। डेनिश कंपनी ने जब पहली बार बेंटम मे अपने अभियान भेजा तो बटाविया मे स्थित डच प्रतिनिधि उनके इस प्रयास से बहुत क्रुद्ध हुए।[14] क्योंकी 1619 मे डच कंपनी के व्यापारियों को बेंटम से कहीं भी मिर्च खरीदने का आदेश दिया गया था। मगर डेनिश कंपनी अनियमित रुप से बेंटम मे अपने पैर जमाने मे कामयाब रही। कंपनी द्धारा बेंटम मे अपने शुरुआती चरण मे ट्रांक्यूबर से 1622, 1629, 1632, 1638 और 1639 मे जहाज भेजे गए। बेरंट पेसार्ट जब क्रेपी के पश्चात गर्वनर बना, तब दो जहाज 1637 मे बेंटम भेजे गए। जिनमे एक जिसका नाम *कोरसोर* था, 30000 फ़्लोरीन के मूल्य की टेक्सटाइल लेकर गया। और दूसरा

---

[9] तपन रायचौधरी, *जॉन कंपनी इन कोरोमंडल 1605–1690 : ए स्टडी इन द इंटररीलेशन ऑफ यूरोपीयन कामर्स एंड ट्रेडिशनल एकॉनॉमिस,* (द हेग, 1962), पृ 113–114

[10] बहार एक वजन मापन इकाई थी, जो मुख्य रुप से ईस्ट इंडिज यानि मलय प्रायद्धीप के क्षेत्रों मे प्रचलित थी। इस प्रकार की वजन मापन इकाई से लोंग, काली मिर्च आदि वस्तुओं का ही वजन किया जाता था। एक बहार लगभग 524 लेबस तथा 475 डच पोंड के बराबर था। एक बहार का वजन मलय प्रायद्धीप के सभी क्षेत्रों मे एक समान नही था।

[11] संजय सुब्रमनयम, *द पोलिटिकल इकॉनमी ऑफ कॉमर्स : साउर्दन इंडिया 1500–1650,* पृ. 185

[12] मार्टिन क्रिएगर, *डेनीश शिपिंग एंड ट्रेड बिटवीन ट्रांक्यूबर ऑन दी कोरोमंडल कोस्ट ऑफ इंडिया एंड साउथ ईस्ट एशिया डयूरींग द सेवेन्टीनथ एंड एटीनथ सेंचुरी , द इंडियन ट्रेड एट द एशियन फ्रंटियर, एडिटड. एस जयसीला स्टीफेन,* (ज्ञान पब्लिशिंग हाउस, न्यू दिल्ली, 2008), पृ. 124

[13] एस्टा ब्रेडसडरोफ, *द ट्रेल्स एंड ट्रेवल्स ऑफ विलेम लायल एन अकांउट ऑफ द डेनिश ईस्ट इंडिया कंपनी इन ट्रांक्यूबर 1639–48,* (म्यूजियम तस्कयूलेनम प्रेस, कोपेनहेगन, 2009), पृ. 14

[14] मार्टिन क्रिएगर, *डेनीश शिपिंग एंड ट्रेड बिटवीन ट्रांक्यूबर ऑन दी कोरोमंडल कोस्ट ऑफ इंडिया एंड साउथ ईस्ट एशिया डयूरींग द सेवेन्टीनथ एंड एटीनथ सेंचुरी ,* पृ. 126

जहाज *सेन्ट जेकब* को जटिल अभियान पर बेंटम भेजा गया जो बेंटम के पश्चात मकस्सार और सोलोर जाएगा फिर वापीस बेंटम और बेंटम से मनीला भेजा जाएगा, जहां पेसार्ट को आशा थी की मनीला मे उसे स्पेनिश गर्वनर द्वारा यहां व्यापार करने के आज्ञा मिल सके।[15] 1638 के मध्य मे 39000 *रियाल* मूल्य की टेकस्टाइल खरीद कर कोरसोर और *सुबी* नाम के जहाजों को बेंटम की फैक्ट्री के लिए भेजा गया। इसके साथ मकस्सार के लिए भी 22000 रियाल की अतिरिक्त टेकस्टाइल भेजी गई। 1639 मे इन जहाजों की मकस्सार से बेंटम की तरफ वापसी के समय बेंटम के लिए 14000 किलोग्राम लोंग, 1319 *पिकल* (ये वजन मापन इकाई थी एक पिकल का भार 60 किलोग्राम के बराबर था।) चीनी भेजी गई। बेंटम भेजे गए कुल सामान का मूल्य 38,464 रियाल था। बेंटम के साथ डेनिश कंपनी का ये व्यापार उस समय अंग्रजी कंपनी से बेहतर स्थिति मे था।

कंपनी की पूर्वी भारत मे गतिविधियां तथा मुगलों के साथ कंपनी के संबंध

कंपनी ने भारत में अपनी स्थापना के पश्चात दक्षिण पूर्वी एशिया के साथ व्यापार करने के अलावा पूर्वी भारत मे भी अपनी व्यापारिक गतिविधियां आरंभ कर दी थी। जब 1625 मे मसूलीपट्टनम मे डेनिश कंपनी ने अपनी फैक्ट्री स्थापित की, साथ ही इसी वर्ष पूर्व मे *पिपली* और *बालासोर* मे भी डेनिश कंपनी ने अपनी फैक्ट्रीयां स्थापित की।[16] बंगाल वह स्थान था जहां रोलेंड क्रेपी डेनिश कंपनी की फैक्ट्री स्थापित करना चाहता था। मगर प्रारंभिक डेनिश प्रयास असफल रहे। हालाकि पहली डेनिश ईस्ट इंडिया कंपनी पूर्वी भारत मे अपने पैर मजबूती से नही जमा पाई। पूर्व मे यह व्यापार कंपनी के लिए धाटे का सौदा ही रहा। इसके पीछे कुछ कारण थे। यहां डेनिश कंपनी के जहाजों को कई बार लूटा गया तथा जहाजों पर सवार कंपनी के कर्मचारीयों को मार भी दिया जाता था। एसी पहली धटना 1625 मे धटी, जब कंपनी के एक जहाज *जुपीटर* को बालासोर के स्थानीय शासक द्वारा पकड़ लिया गया तथा जहाज के सभी कर्मी दल को कैद मे डाल दिया गया, जिनमे बहुत से डेनिश बंदियों की कैद मे मृत्यु हो गई। क्रेपी का अनुमान था की इस धटना से अकेले जहाज का ही 20,000 रिग्सडालर का नुकसान हुआ। जिससे की कंपनी की वित्तीय स्थिति पर भी भारी बोझ पडा।[17] इसके पश्चात क्रेपी ने बंगाल मे व्यापार करने के लिए 1626 मे एरिक ग्रुब तथा विलेम लायल को प्रतिनिधि बना बंगाल भेजा साथ ही ग्रुब को आगरा के लिए इस इरादे से भेजा गया की वह मुगल शासक को कुछ उपहार भेंट करे, ताकि मुगल शासक को डेनिश कंपनी को बंगाल मे अनुकूल वाणिज्यिक शर्तों के साथ व्यापार करने का अधीकार प्रदान करने के लिए मनाया जा सके। मगर ये मिशन पैसों की कमी की वजह से पूरा नही हो सका।[18] क्रेपी के पश्चात गर्वनर बने बेरंट पेसार्ट ने अपने कार्यों से कंपनी पर ऋण का बोझ और बढा दिया। उसने गर्वनर बनने के पश्चात बहुत से जोखीम वाले अभियान बंगाल पैसा बनाने के लिए भेजे। पेसार्ट ने डेनिश कंपनी के जिन क्षेत्रों के साथ व्यापारिक संबंध लाभदायक थे जैसे मकस्सार और तंजौर उन्हें नजरअंदाज करना शुरु कर दिया। यहां तक की उसने ट्रांक्यूबर को भी नजरअंदाज कर दिया। इस लिए उसने मसूलीपट्टनम मे रहने का निर्णय किया। जहां वह हीरे के व्यापार मे शामिल हो गया। मगर ये कार्य सफल न होने की वजह से कंपनी पर कर्ज और बढ गया।[19]

डेनिश कंपनी के लिए बात ओर भी बिगड गई जब 1640 मे डेनिश जहाज *सेन्ट. जेकोब* को बंगाल मे पकड लिया गया जो मकस्सार से मसूलीपट्टनम जा रहा था। इसके यात्रीयों को कैद कर लिया गया तथा माल भी जब्त कर लिया गया। डच रिकार्ड बताते हें कि डेनिश कंपनी का कर्ज बढने के कारण जहाज जब्त किया गया, मगर डेनिश कंपनी ने इसे अत्याचारी कार्य बताया। जिससे की पेसार्ट ने 1642 मे युद्ध की धोषणा कर दी ट्रांक्यूबर से दो जहाज बंगाल पर हमला करने के लिए भेजे गए। इस युद्ध की धोषणा करने से पूर्व ही 1640 के आरंभ मे पिपली मे कंपनी का मुगलों से झगडा हुआ। इसका कारण ये था की पिपली मे कंपनी की बागडोर पॉल नील्सन के हाथ थी। पिपली के गर्वनर मिर्जा मुमीन ने करों की दर बढ़ा दी जिससे कंपनी को यहां के स्थानीय व्यापारीयों से अपना बकाया एकत्रित करना मुश्किल हो गया। मुख्य तौर पर एक कुख्यात फारसी ने कंपनी का ऋण चुकाने से मना कर दिया। जिससे क्रुद्ध होकर कंपनी ने उसे बंदी बनाने के लिए अपने सैनिक भेजे मगर वह फारसी भाग गया। मगर उसकी एक दास लड़की को पकड लिया गया साथ ही उसके सारे सामान को कंपनी ने अपने कब्जे मे ले लिया। कंपनी का ये कार्य मुगलों को पसंद नही आया, मुगलों ने 300 सिपाही कंपनी

[15] संजय सुब्रमनयम, *द कोरोमंडल ट्रेड ऑफ द डेनिश ईस्ट इंडिया कंपनी, 1618–1649*, स्केंडिनेवियन इकनोमिक हिस्ट्री रिव्यू, 37(1), 1989, पृ. 52–53

[16] अनीरुधा रे, *मुगल–डेनिश रिलेशन डयूरिंग द सेवेन्टीनथ एंड अर्ली एटींथ सेंचुरी बंगाल*, प्रोसीडींग इंडियन हिस्ट्री काग्रेस 1997, वाल्यूम 58, 1997, पृ. 285

[17] एस्टा ब्रेडसडरोफ, *द ट्रेल्स एंड ट्रेवल्स ऑफ विलेम लायल एन अकांउट ऑफ द डेनिश ईस्ट इंडिया कंपनी इन ट्रांक्यूबर 1639–48*, पृ. 13–14

[18] कैथरीन वैलन, *द डेनिश ईस्ट इंडिया कंपनी वॉर अगेंस्ट द मुगल एम्पायर 1642–1698*, र्जनल ऑफ अर्ली मार्डन हिस्ट्री 19, 2015, पृ. 447

[19] कैथरीन वैलन, वही, पृ. 447–48

के विरुद्ध कार्यवाही करने के लिए भेजे। इस कार्यवाही मे कंपनी के व्यापारिक कैन्द्र को जला दिया गया, बहुत सारे डेनिशों को बंदी बना लिया गया तथा कंपनी का सारा माल भी जब्त कर लिया गया। कुछ समय के पश्चात पॉल नील्सन तथा उसके साथी वहां से भागने मे सफल हुए।[20] हालांकि कंपनी द्धारा 1643 मे पिपली और बालासोर की फैक्ट्रीयों को छोड़ दिया गया था। फिर बालासोर मे दोबारा फैक्ट्री 1676 मे ही शुरु की जा सकी।

1644 मे पेसार्ट ने कंपनी की सेवा छोड दी थी। इसके पश्चात विलेम लायल कंपनी का गर्वनर बना जिसने बंगाल से दृढता के साथ युद्ध जारी रखा। बंगाल मे डेनिश कंपनी के बहुत से जहाजों के लूटे जाने तथा कब्जा किए जाने के कारण लायल ने बंगाल के विरुद्ध समुद्री डाकू युद्ध (पायरेट वॉर) शुरु कर दिया।[21] "डेनिश कंपनी ने भी बंगाल के जहाजों को जब्त करना शुरु कर दिया। डेनिश कंपनी 1645 तक 40 जहाजों को जब्त कर चुकी थी।"[22] डेनिश कंपनी बंगाल के जहाजों को पकड़ कर उसका सारा माल जब्त कर लेती थी। कंपनी द्धारा जहाज मे सवार लोगों को पकड कर बंदी बनाने के साथ कई लोगों से ईसाई धर्म स्वीकार कराया जाता था। जिस कारण बंगाल के व्यापारियों ने दक्षिण मे जहाज भेजना तथा व्यापार बंद कर दिया था। हालांकि कंपनी और मुगलों के बीच मुठभेड चलती रही। मगर मुगलों की नौसेना ताकत डेनिशों के मुकाबले मे निम्नस्तर की थी। इस लिए मुगलों ने शांति स्थापित करने के लिए डेनिशों के साथ समझौता करने के प्रयास आरंभ कर दिए। उन्होंने कंपनी से युद्ध समाप्त करने तथा शांति स्थापित करने के लिए मुआवजे के रुप मे 80000 रुपयों का प्रस्ताव भेजा। मगर लायल ने प्रस्ताव ठुकरा दिया। और बंगाल के विरुद्ध कार्यवाही और तेज कर दी। मुगलों ने डेनिश आक्रमणों को रोकने के लिए अन्य यूरोपीयन कंपनीयों पर दबाव बनाया जब 1647 मे डेनिश कंपनी ने 8 हाथियों को पकड़ लिया। तब मुगल गर्वनर मलिक बेग के कहने पर अंग्रेजी कंपनी द्धारा डेनिश कंपनी से उनके जहाज रिहा कराने के लिए दो बार प्रयास किए गए। मगर वह सफल नही हुए।[23] 1649 मे क्रिश्चियन चतुर्थ की मृत्यु के पश्चात पहली डेनिश ईस्ट इंडिया कंपनी का भी पतन हो गया। हालाकि कंपनी और मुगलों के साथ ये झगडा समाप्त नही हुआ। जब 1670 मे एक नया चार्टर प्रदान कर दूसरी डेनिश ईस्ट इंडिया कंपनी की स्थापना की गई, तब भी नई कंपनी का बंगाल के साथ ये जहाज तथा माल जब्त करने का झगडा चलता ही रहा। इस प्रकार पूर्व भारत मे पहली डेनिश कंपनी अपना पैर सही से नही जमा पाई।

कंपनी का पतन

पहली डेनिश ईस्ट इंडिया कंपनी को 1650 मे भंग कर दिया गया था। कंपनी के पतन के लिए कई कारण जिम्मेदार थे। जिनकी वजह से कंपनी का पतन हुआ। कंपनी की आर्थिक स्थिति जैसा की उपर बताया गया है की कंपनी की स्थापना के समय कंपनी मे अलग–अलग देशों के व्याापारियों ने इसमें अपना निवेश किया था। जब डेनिश कंपनी के जहाज डेनमार्क के लिए रवाना होते थे, तो समुद्री यात्रा के जोखीमों के चलते जैसे जहाज का डूब जाना लूट लिया जाना तथा रास्ता भटक जाना आदि खतरों के चलते कंपनी के निवेशकों को बहुत हानि होती थी। एसी ही एक धटना 1624 मे जब क्रिसिटियनहेवन नामक कंपनी के जहाज को डेनमार्क वापसी के समय किसी दुर्धटना के कारण उसे आयरलैंड मे प्रवेश करना पड़ा था। जिस कारण ये बहुत देर बाद कोपेनहेगन पहुंचा। इन खतरों के चलते कंपनी के मूल शेयरधारक बाद मे कंपनी मे और निवेश करने को तैयार न हुए। तब डेन शासक क्रिश्चियन चतुर्थ कंपनी की सहायता के लिए आगे आया। 1624 तक कंपनी पर 307,000 रिक्स डॉलर क्रिश्चियन चतुर्थ का बकाया था। दूसरी तरफ कंपनी के दूसरे शेयरधारकों ने कंपनी मे अपना निवेश बंद कर दिया। जिससे शासक की हिस्सेदारी कंपनी पर और बढ़ गई। क्रिश्चियन चतुर्थ 1630 तक कंपनी के आधे शेयर का मालिक बन गया।[24] एक तरह से क्रिश्चियन चतुर्थ ही अब कंपनी का मालिक बन चुका था। 1648 मे क्रिश्चियन चतुर्थ की मृत्यु हो गई। कंपनी का कर्ज 1650 तक बहुत अधीक हो गया था। उसके पश्चात बने शासक किंग फ्रेडरिक तृतीय ने कंपनी को 1650 मे भंग कर दिया। फ्रेडरिक तृतीय ने ट्रांक्यूबर को बेचने के कई प्रयास किए। तपन रायचौधरी के अनुसार, "कंपनी की स्थिति एक तरह से मरणासन्न हो गई थी"।[25] ये स्थिति तब तक रही जब तक 1670 मे क्रिश्चियन पंचम द्धारा नई कंपनी की स्थापना नही की गई। इसके अलावा कंपनी पर कर्ज भी अधीक हो गया था। कंपनी

[20] एस्टा ब्रेडसडरोफ, वही, पृ. 80

[21] रैंडॉल्फ़ स्टॉव, *'डेनमार्क इन द इंडियन ओसियन, 1616–1845 एन इंट्रोडक्शन'*, कुनापीपी 1(1), 1979, पृ. 16

[22] अनीरुधा रे, वही, पृ. 285

[23] विलियम फोस्टर, *'द इंगलिश फैक्ट्रीज इन इंडिया 1646–1650: ए कैलेंडर ऑफ डॉक्यूमेंट इन द इंडिया ऑफिस वेस्टमिनिस्टर'*, ऑक्सफ़ोर्ड, 1914, पृ. 174

[24] संजय सुब्रमनयम, *द कोरोमंडल ट्रेड ऑफ द डेनिश ईस्ट इंडिया कंपनी, 1618–1649*, पृ. 48

[25] तपन रायचौधरी, वही, पृ. 115

को डेनमार्क से बहुत कम सहायता प्रापत होती थी। कंपनी की आर्थिक स्थिति इतनी खराब थी की कंपनी को 1624 से लेकर 1630 तक डेनमार्क से कोई भी जहाज और पूंजी प्रापत नही हुई। कंपनी इस समय अवधि मे एशिया के भीतर होने वाले व्यापार से प्रापत लाभ पर ही अपना संचालन कर रही थी।

इसके साथ ही कंपनी की कमजोर आर्थिक स्थिति के कारण तंजौर के शासक के साथ संबंध भी 1626 से 1628 मे बिगडने लगे। क्योंकी कंपनी को शासक द्वारा जो गांव दिए गए थे। उसके बदले मे कंपनी ने जो शासक को राजस्व भुगतान करना था। उसका भुगतान करने मे कंपनी असफल रही। कंपनी की आर्थिक हालत इतनी खराब थी, की कंपनी ने 1629 मे डचों को डेंसबोर्ग किला बेचने का निर्णय किया। मगर ये प्रस्ताब डच गर्वनर *कोएन* द्वारा ठुकरा दिया गया था।[26] कंपनी द्वारा डेनमार्क भेजा जाने वाला माल बाकी यूरोपीयन कंपनी के मुकाबले मे काफी कम था। इसके साथ ही डेनिश कंपनी को अपने देश से जो सहायता प्रापत होती थी वह दूसरी यूरोपीयन कंपनीयों के मुकाबले मे काफी कम थी। 1618 से 1639 तक सिर्फ 18 जहाज ही कोपेनहेगन से बाहर भेजे गए थे। और 1622 से 1637 के बीच सिर्फ सात जहाज ही कोपेनहेगन वापिस लौटे। इस तरह के व्यापार से कोपेनहेगन एशियाई माल के लिए यूरोप मे विकसित नही हो सकता था।[27] इस प्रकार कंपनी को बहुत सी आर्थिक समस्याओं से जुझना पडा जो इसके पतन का कारण बनी।

दूसरी तरफ कंपनी के पास सैनिक शक्ति की बहुत कमी थी। यूरोप मे चल रहे युद्धों के कारण डेनमार्क द्वारा अपने उपनिवेशों मे बहुत कम सैनिक संसाधन भेजे गए थे। जिस कारण कंपनी के गर्वनर भी भारत मे स्थानीय सत्ता संधर्ष के इच्छुक नही थे। जिस कारण कंपनी सत्ता और व्यापार की दौड़ मे बाकी यूरोपीयन कंपनीयों के मुकाबले मे पीछे रह गई। कंपनी द्वारा बंगाल मे व्यापार करने की कोशीश मे कंपनी का मुगलों के साथ युद्ध मे उलझना जिससे कंपनी को काफी नुक्सान तो हुआ ही, साथ ही कंपनी को मुगलों की तरफ से जो अन्य सुविधांए मिल पाती उससे भी कंपनी को हाथ धोना पड़ा। इन कारणों के चलते कंपनी भारत मे अपने आप को मजबूती से नही जमा पाई। ये नही हे की डेनिश कंपनी के 1650 मे पतन के साथ डेनिश भी यहां से चले गए। हांलाकि ये पहली डेनिश कंपनी का ही पतन था। इसके पश्चात दो और डेनिश कंपनीयां बनी। 1845 मे तीसरी डेनिश कंपनी ने सबकुछ अंग्रेजी कंपनी को बेच दिया था।

निष्कर्ष

पहली डेनिश ईस्ट इंडिया कंपनी जिस तरह तीन दशकों तक अपने कम संसाधनो के होने के बावजूद जिस तरह एशिया मे व्यापार करती रही तथा कई शासकों के साथ समझौते भी किए ये कार्य काफी साराहनीय थे। इन कम संसाधनो के बल पर उन्होंने मुगलों से भी टक्कर ली। अगर कंपनी को डेनमार्क से पर्याप्त सहायता प्रापत होती तो निश्चय ही कंपनी का भारत मे शीध्र पतन न होता। क्रिश्चियन चतुर्थ की मृत्यु के पश्चात कंपनी को डेनमार्क से सहायता भेजने वाला कोई न रहा। और कंपनी के बढ़ते कर्ज ने कंपनी की आर्थिक स्थिति और नाजुक कर दी। जिससे कंपनी का अंत होना स्वाभाविक ही था। निश्चय ही कंपनी का पतन अपने देश से समय पर आर्थिक और सैनिक सहायता न मिलने के कारण हुआ।

[26] संजय सुब्रमनयम, *द पोलिटिकल इकॉनमी ऑफ कॉमर्स : साउर्दन इंडिया 1500–1650*, पृ. 183–84

[27] ओले फेल्डबैक, *द डेनिश एशिया ट्रेड 1620–1807: वेल्यू एंड वाल्यूम*, स्केंडिनेवियन इकनोमिक हिस्ट्री रिव्यू 39:1,1991, पृ. 3